विदेशी बाजार से ऋण लेना खतरनाक

जब सरकार का कुल खर्च उसकी राजस्व प्राप्तियों और अन्य प्राप्तियों के जोड़ से ज्यादा होता है, तो वह राजकोषीय घाटा कहलाता है। इस राजकोषीय घाटे की भरपाई जनता से उधार लेकर की जाती है। भारत सरकार द्वारा आज से पहले सरकारी खर्च की भरपाई के लिए कभी भी विदेशी बाजारों में बांड जारी कर ऋण नहीं लिया गया। अटलजी के प्रधानमंत्री काल में अनिवासी भारतीयों का आह्वान करते हुए इंडिया रिसर्जेंट बांड जारी किये गये थे और प्रवासी भारतीयों ने दिल खोल कर इन बांडों में निवेश किया था।भारत सरकार अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों जैसे विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, एशियाई विकास बैंक समेत कई संस्थानों से ऋण लेती रही है। ये ऋण अत्यंत रियायती दरों पर होते हैं। समय-समय पर आवश्यकता अनुसार सरकार द्वारा अंतरराष्ट्रीय बाजारों में गैर-रियायती ऋण भी लिये गये हैं। लेकिन सरकार द्वारा कभी भी घोषित रूप से बजट में घाटे को पूरा करने के लिए विदेशों से ऋण नहीं लिया गया। अपने बजट भाषण में वित्तमंत्री ने कहा था, 'अपनी जीडीपी में भारत का संप्रभु ऋण विश्वभर में सबसे कम है, जो पांच प्रतिशत से भी नीचे है। सरकार विदेशी बाजारों में विदेशी मुद्रा में अपनी सकल उधारी कार्यक्रम के एक हिस्से को बढ़ाना शुरू करेगी। इससे घरेलू बाजार में सरकारी प्रतिभूतियों की मांग पर भी लाभप्रद प्रभाव पड़ेगा'। हमारी जीडीपी आज 2।8 खरब डॉलर की है। यदि जीडीपी के 10 प्रतिशत के बराबर ऋण लिया जाता है, तो इसका मतलब होगा 280 अरब डॉलर का ऋण। रुपये में यह 19 लाख 15 हजार करोड़ रुपये होगा। इस वक्त भारत का विदेशी मुद्रा भंडार सभी रिकॉर्ड तोड़ कर लगभग 430 अरब डॉलर तक पहुंच गया है। ऐसे में विदेशी मुद्रा के रूप में ऋण लेने का कोई औचित्य भी नहीं दिखता। सरकारी सूत्रों से यह भी कहा जा रहा है कि विदेशी उधार वर्तमान में जीडीपी के पांच प्रतिशत से भी कम है और इसे आसानी से 15 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। ऐसे में प्रश्न है कि इस प्रकार से कर्ज बढ़ाने की कोई सीमा तय नहीं की जा सकती। क्या गारंटी है कि आगे आनेवाली सरकारें इस कर्ज को और ज्यादा नहीं बढ़ायेंगी? कर्ज लेना तो आसान है, लेकिन सरकार के पास निर्यात बढ़ा कर विदेशी मुद्रा कमाने जैसी कोई योजना भी दिखायी नहीं देती। ऐसे में कर्ज की अदायगी मुश्किल हो सकती है। पहले भी कई देशों ने अपने सरकारी घाटे को पूरा करने के लिए अंतरराष्ट्रीय बाजारों से ऋण लिया है। लेकिन इन देशों का अनुभव कभी भी अच्छा नहीं रहा। बजट भाषण में वित्त मंत्री ने यह नहीं बताया कि जो प्रस्ताव वे दे रही हैं, उसको अपनानेवाले देशों का क्या हाल हुआ। इंडोनेशिया का विदेशी ऋण आज 36।2 प्रतिशत है, ब्राजील का 29।9 प्रतिशत, अर्जेंटीना का 51।9 प्रतिशत, टर्की का 53।8 प्रतिशत और मैक्सिको का 36।5 प्रतिशत है। इन देशों द्वारा विदेशी ऋण लेने के फैसले ने उन्हें ऐसे भंवर में फंसा दिया है कि हर बार उस ऋण की अदायगी के लिए उन्हें और विदेशी ऋण लेना पड़ रहा है। कारण यह है कि विदेशी ऋणों की अदायगी विदेशी मुद्रा (डॉलर) में करनी होती है। कई देशों के इस जाल में फंसाने के बाद अमीर देशों ने अब कर्जदार देशों पर अपनी शर्तें लादनी शुरू कर दी है। माना जाता है कि विदेशों से विदेशी मुद्रा में ऋण लेना सस्ता पड़ता है और इसलिए राजकोषीय प्रबंधन आसान हो जाता है। ऋणदाता देशों में ब्याज दरें कम होती हैं और ब्याज दर निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका रेटिंग की होती है। चूंकि अंतरराष्ट्रीय रेटिंग ऐजेंसियों ने भारत की बेहतर रेटिंग की हुई है, हम अपने खर्चों के लिए कम खर्चीले ऋण विदेशों से ले सकते हैं।

कश्मीर पर ट्रंप की कपटचाल

पुष्पेश पंत

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप अपने उबड़-खाबड़, ताबड़तोड, बड़बोले-बेतुके बयानों को लिए काफी बदनाम हैं। पर इससे उन्हें रत्तीभर फर्क नहीं पड़ता और वह बदस्तूर अपनी रफ्तार से राजनयिक गाड़ी को पटरी पर दौड़ाते रहते हैं, जिसका अचानक दुर्घटनाग्रस्त होना कभी भी संभव है। इस बार उन्होंने पेशकश की है कि कश्मीर विवाद को निबटाने के लिए वह भारत और पाकिस्तान के बीच मध्यस्थता करने के लिए तत्पर हैं। यह बात उन्होंने उस वक्त कही, जब वह पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान के अमेरिकी दौरे के वक्त वह उनकी मेजबानी कर रहे थे। यह बात पाकिस्तान के पुराने दोस्त अमेरिका के अनेक पूर्व राष्ट्रपति भी सुझा चुके हैं और भारत ने हमेशा ऐसे हर प्रस्ताव को सिरे से नकार दिया है, क्योंकि हमारी सरकार का यह मानना है कि कश्मीर का विवाद उभयपक्षीय है और इसका समाधान भारत और पाकिस्तान खुद ही बिना किसी तीसरी ताकत और हस्तक्षेप के ढूंढने में सक्षम हैं। यह बात ताशकंद और शिमला समझौते के वक्त भी रेखांकित की जा चुकी थी। इस बात को ध्यान में रखना जरूरी है कि जब-जब पाकिस्तान की गर्दन किसी शिकंजे में फंसी होती है, तब वह मध्यस्थता की बात भूल जाता है और भारत को यही आश्वासन देता है कि वह इस तरीके से विवाद के निबटारे के लिए राजी है, पर जरा-सी राहत मिलते ही उसके तेवर टेढ़े होने लगते हैं और वह कश्मीर समस्या के अंतरराष्ट्रीयकरण की मांग जोर-शोर से उठाने लगता है।

जहां तक ट्रंप का सवाल है, उन्हें यह मुगालता है कि वह दुनिया के सबसे ताकतवर व्यक्ति ही नहीं, सौदे पटाने में माहिर सफल व्यापारी भी हैं। उनकी नजर में हर अंतरराष्ट्रीय विवाद को एक कारोबारी सौदे की तरह पटाया जा सकता है। जो बात इस वक्त उनके सुझाव को बेतुका बना रही है, वह यह है कि पाकिस्तान चारों तरफ से घिरा है और बुरी तरह कंगाल है। पाकिस्तान नहीं चाहता कि अमेरिका उसके ऊपर अपनी सहायता की एवज में और अधिक दबाव बढ़ाए। यदि किसी प्रकार इमरान खान कश्मीर विवाद के निबटारे के बहाने भारत पर भी ट्रंप का कुछ दबावश् जगजाहिर कर सके, तो वह अपने देशवासियों से यह कहने की हालत में होंगे कि उन्होंने अमेरिका के सामने घुटने नहीं टेके हैं। जहां तक भारत का सवाल है, उसे इस कपटचाल में नहीं फंसना चाहिए। पाकिस्तान के किसी भी आतंकवादी हमले का मुंहतोड़ जवाब देने के लिए भारत सीमा पार जा कर सर्जिकल स्ट्राइक करने कजोखिम उठा सकता है। कश्मीर की घाटी में सक्रिय हुर्रियत के अलगावादियों की तथा बुरहान वानी को पोस्टरबॉय बना कर महिमा मंडित करनेवाले नौजवान दहशतगर्दों की भी कमर टूट चुकी है। कश्मीरी अवाम का समर्थन निरंतर घटता जा रहा है, क्योंकि उन्होंने अपने अनेक कश्मीरी भाइयों को भी निशाना बना कर अपने खूंखार मौकापरस्त चेहरों को बेनकाब कर दिया है। भारत को यह बात अच्छी तरह समझ आ चुकी है कि पाकिस्तान हो या स्थानीय अलगावावादी, दोनों खस्ताहाल हैं और हमें बिना शर्त अपनी इच्छानुसार, जिससे चाहे उससे संवाद करने का मौका मिल रहा है। इसी संदर्भ में चीन का जिक्र जरूरी है। पाकिस्तान ने कई दशक पहले जम्मू-कश्मीर के जिस हिस्से पर नाजायज कब्जा किया था, उसका एक बड़ा हिस्सा चीन को सौंप दिया। तब चीन के लिए इसकी उपयोगिता तिब्बत के लॉपनोर क्षेत्र में अपने परमाण्विक कार्यक्रम के संदर्भ में और तिब्बती विद्रोह को कुचलने के लिए थी। आज इसका और भी अधिक संवेदनशील सामरिक महत्व है, क्योंकि इसी गिलगिट बालटिस्तान वाले इलाके से होकर वह ऐतिहासिक रेशम राजमार्ग गुजरता है, जो चीन को कराची के निकट ग्वादर के बंदरगाह से जोड़ता है। भारत ने चीन की इस महत्वाकांक्षी परियोजना का निरंतर विरोध इसलिए किया है कि चीन ने उस भूमि से होकर गुजरनेवाले राजमार्ग के लिए पाकिस्तान की श्अनुमतिश् यथेष्ठ समझा है, जबकि इस भूमि पर भारत अपनी संप्रभुता की दावेदारी मुखर कर चुका है। पाकिस्तान की ही तरह चीन भी इस समय घिरा हुआ है। अमेरिका के साथ वाणिज्य युद्ध के कारण उसकी आर्थिक विकास दर में जबर्दस्त गिरावट आयी है। चीनी राष्ट्रपति भारत को यह संकेत दे चुके हैं कि उनका देश भारत-चीन सीमा विवाद के स्थायी समाधान के लिए उत्सुक है। पाकिस्तान का प्रयास यह रहा है कि चूंकि अक्साई चिन वाला इलाका जम्मू-कश्मीर राज्य के लद्दाख प्रदेश में स्थित है, अतः यह दलील दी जा सके कि कश्मीर विवाद के आज दो नहीं तीन पक्ष हैं।

भारत इस बात को कतई स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि भारत चीन के साथ सीमा विवाद के निबटान में जो कुछ लेन-देन जब भी करेगा, उसमें पूर्वी सरहद का सिक्किम और अरुणाचल वाला बहुत बड़ा हिस्सा शामिल होगा, जिसका पाकिस्तान से कोई लेना-देना नहीं है। भारत-चीन सीमा विवाद भी उभयपक्षीय है, जिसमें किसी श्ईमानदार पंचश् या मध्यस्थ की कोई गुंजाइश नहीं है। ट्रंप के बयान की पृष्ठभूमि के कुछ और जटिल आयाम हैं, जिन्हें अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। ट्रंप का दावा है कि हाफिज सईद को गिरफ्तार करवाने में और अजहर मसूद को आतंकवादी घोषित करवाने में उनकी अहम भूमिका रही है, जिसके लिए भारत को उनका आभार मानना चाहिए।इसकी एवज में यदि वह अब अपनी अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए कश्मीर विवाद में मध्यस्थता की भूमिका चाहते हैं, तो इस गलतफहमी से उन्हें जल्द-से-जल्द छुटकारा दिलाना चाहिए। भारत और अमेरिका के बीच भले ही अभी अमेरिका के साथ वाणिज्य युद्ध जैसे हालात पैदा नहीं हुए है, पर ट्रंप अमेरिकी दोस्ती की अच्छी-खासी कीमत वसूल कर चुके हैं। मसलन उन्हें खुश करने के लिए भारत ने ईरान से तेल के आयात में कटौती की है और चाबहार बंदरगाह की परियोजना को लगभग ठंडे बस्ते में डाल दिया है।

इसकी एवज में ट्रंप ने भारत को कोई रियायत आर्थिक क्षेत्र में नहीं दी है। भारतीय उत्पादों पर शुल्क बढ़ाये जा चुके हैं और एच-1 बी वीजा मामले में भी भारत के साथ सख्ती बरती जा रही है। विश्व व्यापार संगठन को अंगूठा दिखाते ट्रंप भारत जैसे विकासशील देशों से उत्पादों और सेवा के आयात पर शुल्केतर प्रतिबंध भी बढ़ाते जा रहे हैं। इस सब को ध्यान में रखते हुए भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर विवाद में उनकी मध्यस्थता का प्रस्ताव पुराने मुहावरे में कबाब में हड्डी ही कहा जा सकता है, जो कभी भी हमारे गले की जानलेवा फांस बन सकती है।

विपक्षी नेताओं को सोनभद्र न जाने देना

शीतला सिंह

उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जिले में घोरावल क्षेत्र के एक गांव में भूमि पर कब्जे को लेकर हुए संघर्ष में दस आदिवासियों की हत्या के बाद प्रदेश की योगी आदित्यनाथ सरकार वहां किसी भी विपक्षी दल के नेता या प्रतिनिधिमंडल को जाने नहीं दे रही। कांग्रेस महासचिव प्रियंका गांधी वाड्रा इसको लेकर धरने पर उतरीं तो उन्हें हिरासत में लेकर 26 घंटों तक चुनार स्थित किले के गेस्ट हाउस में रोके रखा गया। इसके बावजूद उन्होंने कहा कि वे उक्त पंक्तियां लिखने तक वे यह कहकर दिल्ली वापस जा चुकी हैं कि फिर वापस आयेंगी और पीड़ितों की पांच सूत्री मांगों को लेकर संघर्ष करेंगी। इस सिलसिले में एक वक्त ऐसा भी आया, जब मिर्जापुर के जिला मजिस्ट्रेट के आदेश से प्रियंका को जबरदस्ती चुनार के किले के गेस्टहाउस ले जाने वाली पुलिस हाथ खड़े कर कहने लगी कि न वे गिरफ्तार हैं और न ही उन्हें आने-जाने से रोका गया है। यानी वे स्वतंत्र हैं, जबकि असलियत यह थी कि वाराणसी हवाई अड्डे पर दौरान व्यक्तियों के आने-जाने और घर से निकलने पर पाबन्दी नहीं थी-पांच या उससे ज्यादा व्यक्तियों के एक साथ आने-जाने पर ही प्रतिबंध था। मिर्जापुर के मजिस्ट्रेट का आदेश वाराणसी में लागू करना भी विधिसम्मत नहीं ही था, क्योंकि यह उनकी अधिकार सीमा से परे था। स्वाभाविक ही यह प्रश्न प्रमुख रूप से विचारणीय हो जाता है कि सोनभद्र में, जहां 10 हत्याएं हुई हैं, ऐसी कौन-सी स्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसे लोगों की नजरों से छिपाने के लिए प्रदेश सरकार विपक्षी

हत्याओं से पीड़ित परिवारों से मिले बगैर वापस नहीं जाने वाली और प्रशासन उन्हें रोकना ही चाहता है तो गिरफ्तार करके जेल भेज दे, वे जेल जाने को तैयार हैं। इस पर वाराणसी मण्डल के कई बड़े अफसरों की ड्यूटी लगा दी गई कि वे उनसे मिलकर कोई रास्ता और साथ ही शासन को मुश्किल से निकालें। ये अधिकारी कामयाब नहीं हुए तो भी प्रशासन ने प्रियंका को वहां जाने देने के बजाय पीड़ित परिवारों को किले के गेस्ट हाउस में लाकर उनसे मिलवाने का रास्ता चुना। प्रशासनिक शक्ति के बल पर वह पन्द्रह हत्यापीड़ितों को गेस्टहाउस ले आया, जिनसे बातचीत के बाद प्रियंका ने कहा कि अब उनका उद्देश्य पूरा हो गया है। ये उतरने के बाद से ही प्रशासन ने उन्हें रोकने-छेंकने और सोनभद्र न जाने देने का प्रयास आरम्भ कर दिया था। अलबत्ता, वे वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय के सर सुन्दरलाल अस्पताल के ट्रामा सेंटर में किसी तरीके से घायलों का हाल-चाल जानने पहुंच गई थीं।

इसके दूसरे दिन तृणमूल कांग्रेस के प्रतिनिधियों को भी बाबतपुर हवाई अड्डे पर ही रोक लिया और सोनभद्र नहीं जाने दिया गया था। इतना ही नहीं, कांग्रेस के जो नेता प्रियंका गांधी से मिलने चुनार के किले तक जाना चाहते थे, उन्हें भी नहीं जाने दिया गया। यह तब था, जब चुनार में धारा-144 लगी भी थी तो कर्फ्यू का रूप नहीं धारण कर सकी थी। यानि उस नेताओं को वहां जाने से रोक रही है? संविधान के मूल अधिकारों में तो हर व्यक्ति को देश में तब तक कहीं भी आने-जाने, बसने और व्यवसाय करने की छूट है, जब तक इस सम्बन्ध में कोई विशेष व्यवस्थाजनक कानून न हो। तब ऐसी स्थितियां क्यों और कैसे आती हैं, जिनमें प्रशासनिक असफलता के ही ऐसे हर काण्ड का मुख्य कारण होने का पर्दाफाश न होने देने की राजनीतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए प्रशासन नेताओं की रोक-छेंक के अनुचित कदम उठाता है? वैसे तो सरकार के पास इतने असीमित अधिकार हैं, जिनका इस्तेमाल करके वह अपने कर्तव्यों से परे होकर जनता के मूल अधिकारों पर भी हमलावर हो सकती है, लेकिन फिलहाल, देश में जो लोकतांत्रिक व्यवस्था है, उसमें जनता के मूल अधिकारों को सुरक्षित करना राज्य के दायित्वों में ही आता है। कानून और व्यवस्था भी केन्द्र का नहीं, राज्य का ही विषय है। यह और बात है कि इस वक्त उत्तर प्रदेश और केन्द्र में एक ही दल की सरकारें हैं। इसलिए सोनभद्र जैसे कांडों के संदर्भ में विपक्षी दलों के नेताओं को यह अवसर मिलना ही चाहिए कि वे मौके पर जाकर वास्तविकता देख और जनता के सामने रख सकें। संविधान के तहत भी विपक्ष कोई अवांछित या शोभा की वस्तु नहीं है। यही कारण है कि प्रतिनिधि सदनों में विपक्ष के नेता को मंत्रिमंडल के सदस्यों जैसी सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। ऐसे में उनके आवागमन पर अंकुश को तो अलोकतांत्रिक ही माना जायेगा। भले ही अंग्रेजों के बनाये जाब्ता फौजदारी कानून को सरकारों ने आज भी यथारूप स्वीकार कर रखा हो, संवैधानिक मान्यताओं का हनन करने वाले उसके अंश संविधानेतर और निरर्थक ही माने जायेंगे। पुलिस की बात करें तो जिस एक्ट के तहत उसकी स्थापना हुई है, उसकी भूमिका में ही कहा गया है कि वह श्जनता के जानमाल की हिफाजत के लिए है। उसे आपातकालीन अधिकार भी दिये गये हैं, लेकिन उनका विधिक और लोकतांत्रिक मान्यताओं के विपरीत इस्तेमाल स्वीकार किया जा सकता है। सोनभद्र कांड में पुलिस यह सब जानने के बावजूद वाराणसी हवाई अड्डे से ही नेताओं को रोकने की कवायदों में लग गई तो यकीनन, उसके अधिकारियों को प्रदेश सरकार ने तदनुकूल गुप-चुप निर्देश दे रखे होंगे, जबकि उन्हें पारदर्शी होना चाहिए, जिससे लोग जान सकें कि उनके पीछे मूल इच्छा और उद्देश्य क्या हैं? या वे संवैधानिक मर्यादाओं के कितने अनुकूल या विपरीत हैं?सोनभद्र कांड का अब तक ज्ञात मूल कारण यही है कि आदिवासी जिस भूमि का इस्तेमाल करते आ रहे थे, कुछ दबंग उस पर शक्ति, अधिकार और हथियारों के बल पर काबिज होना चाहते थे। सवाल है कि जब ऐसा करने के लिए बड़ी संख्या में हथियारबन्द गुर्गों की भीड़ जुटाई जा रही थी, पुलिस और प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा उसकी अनदेखी क्यों की गई? क्यों मौके पर देर तक गोलियां चलती रहने के बावजूद पुलिस का कोई दखल देखने में नहीं आया? इस सरकारी दावे का क्या अर्थ है कि जो हुआ, वह पूर्व कांग्रेस सरकारों की करनी का नतीजा है, खासकर जब राज्य अनवरत रूप से कार्यरत रहता है?जिस बड़ी संख्या में पुलिस को अब घटनास्थल और उसके आसपास लगाया गया है, उसका कोई अंश तब क्यों नहीं था, जब ये हत्याएं की जा रही थीं? फिर अब प्रियंका गांधी या दूसरी पार्टियों के नेता वहां पहुंच भी जाएं तो वे प्रशासन के लिए इसके सिवा और क्या परेशानी पैदा कर सकते हैं कि संसद, विधानमंडल या मीडिया के समक्ष उसे अपने तौर पर वर्णित करें?राज्य की ऐसी ही कारस्तानियों के मद्देनजर उसे हमारे शास्त्रों में निरंकुशता का प्रतीक बताया गया है। नेताओं का सीमित संख्या में भी किसी मौका-ए-वारदात पर जाना रोका जायेगा, तो उसके उद्देश्यों को लेकर सवाल उठेंगे ही। यह आरोप भी लगेंगे ही कि सम्बन्धित अधिकारी अपनी शक्तियों का प्रयोग स्वविवेक से नहीं ऊपरी दबाव में कर रहे थे, जो सर्वथा गैरवाजिब था। इस गैरवाजिब की विभिन्न कड़ियों को जोड़ा जाये, तो साफ लगता है कि किसी क्षेत्र या जिले के अधिकारी नहीं बल्कि राज्य के संचालक ही स्थितियों का इस रूप में मूल्यांकन और नियंत्रण कर रहे थे। स्वाभाविक ही वे उसकी जिम्मेदारी से अलग नहीं हो सकते। लेकिन कुल मिलाकर देश-प्रदेश में न तो राजशाही है, न तानाशाही और न सैनिक शासन। निर्वाचित सरकारें हैं, जो संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ लेकर सत्ता में हैं। इसलिए लोकतांत्रिक मर्यादाओं की अपेक्षा यही है कि वे संवैधानिक प्रावधानों के विपरीत अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करें, क्योंकि यह जनता के खिलाफ एक बड़ा अपराध है।

भाजपा को चुनौती देने के लिए वामपंथी लोकतांत्रिक एकता वक्त की जरूरत

नित्य चक्रवर्ती

सुधाकर रेड्डी के इस्तीफे के बाद सीपीआई के नए महासचिव के रूप में कार्यभार संभाला है। राजा तीन दशकों से अधिक समय से पार्टी के जाने माने नेता हैं और वे सरकार और विपक्ष से निपटने में सीपीआई नेताओं में सबसे अधिक सक्रिय हैं। इस कठिन राजनीतिक दौर में भाजपा की चुनौती का सामना करने के लिए वाम और लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष ताकतों की व्यापक एकता बनाने में पार्टी अन्य वाम नेताओं के उनकी मदद करनी चाहिए। राजा खुद वामपंथियों के समक्ष उपस्थित चुनौतियों को स्वीकार करते हैं। उन्होंने राष्ट्रीय राजनीति में वामदलों को फिर से प्रासंगिक बनाने के लिए पार्टी की नीतियों को नया रूप देने की बात की है और ट्रेड यूनियनों और किसान संगठनों के माध्यम से बड़े पैमाने पर आंदोलन चलाने में की बात भी की है। वे स्वीकार करते हैं कि केवल वाम ही उस आंदोलन की जिम्मेदारी का निर्वहन नहीं कर सकते। वामपंथी आंदोलन में एक उत्प्रेरक के रूप में काम करने की कोशिश करेंगे, लेकिन कांग्रेस और अन्य धर्मनिरपेक्ष ताकतों को भी भाजपा-विरोधी संघर्ष में भाग लेना होगा। भाजपा की भारी जीत के बाद से मुख्य विपक्षी पार्टी कांग्रेस में नेतृत्व संकट है और बसपा सुप्रीमो मायावती ने समाजवादी पार्टी के साथ गठबंधन समाप्ति की घोषणा कर दी है। अखिलेश यादव ने भी जवाब दिया है कि आने वाले महीने में उत्तर प्रदेश में ग्यारह विधानसभा क्षेत्रों के चुनावों में पार्टी अकेले दम पर उतरेगी। श्वपक्ष के लिए स्थिति काफी खराब है। तेलंगाना और गुजरात में कांग्रेस में टूट हो रही है। कर्नाटक में भी कई कांग्रेस विधायकों ने इस्तीफा दे दिया है। राहुल गांधी ने खुद कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे चुके हैं और अनेक राज्यों के पार्टी अध्यक्षों से इस्तीफे की पेशकश की है। मंथन की प्रक्रिया जारी है। किस तरह से यह संगठन के लिए अच्छा या बुरा होगा, यह अभी तक स्पष्ट नहीं है, लेकिन यह स्पष्ट है कि विपक्षी दल अब भाजपा का सामना कर रहे हैं। 2019 में बीजेपी पूरी तरह से नई बीजेपी है और इसकी बड़ी ताकत को संसद और बाहर दोनों में समान स्तर पर लड़ने के लिए किसी भी व्यावहारिक रणनीति पर काम करना होगा। अगले पांच साल के दौरान विधानसभा चुनावों में जीत सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित करना होगा। अंत में 2024 में लोकसभा चुनाव होगा। भारत में किसी भी राजनीतिक दल के लिए केंद्र में सत्ता में दस साल लगातार बने रहना कोई नई बात नहीं है। 2004 से दस साल तक सत्ता में से बाहर रहने के बाद 2014 में भाजपा खुद सत्ता में आई। इससे पहले भाजपा 1999 से पूर्ण कार्यकाल और 1998 में अल्पावधि के लिए सत्ता में थी। 1996 में भाजपा केवल 13 दिनों के लिए सत्ता में थी। संसदीय लोकतंत्र में ये सामान्य घटनाक्रम हैं लेकिन 2019 के चुनावों के बाद चीजें काफी हद तक बदल गई हैं।

भाजपा अब न केवल भारत में बल्कि पूरे लोकतांत्रिक विश्व में जहां संसदीय चुनाव होते हैं, वहां सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी है। केवल चीन में, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की अधिक सदस्यता है लेकिन चीन मुख्य रूप से एकदलीय व्यवस्था वाला राज्य है और इसे लोकतांत्रिक देशों के बीच नहीं शुमार किया जाता है। देश के हर कोने को कवर करने वाला आरएसएस जमीनी स्तर का संगठन है। अब भाजपा सच्चे अर्थों में एक अखिल भारतीय पार्टी है। 2019 के लोकसभा चुनावों के नतीजों से देश के वामपंथी आंदोलन को बड़ा झटका लगा है, खासकर देश की दो प्रमुख कम्युनिस्ट पार्टियों सीपीआई और सीपीआई (एम) को। 17 वीं लोकसभा में, सीपीआई में केवल दो सदस्य होंगे जबकि सीपीएम के तीन सदस्य होंगे। नई लोकसभा के 542 निर्वाचित सदस्यों में से कुल पांच वामपंथी सदस्य हैं। इन पांच सीटों में से केरल की केवल एक सीट को सीपीएम ने लेफ्ट ब्लॉक की ताकत के आधार पर जीता है, तमिलनाडु की अन्य चार सीटों पर द्रमुक के साथ गठबंधन करके विजय हासिल की गई है। 1917 में रूस में हुई कम्युनिस्ट क्रांति के बाद भारत में 1925 में सीपीआई का गठन हुआ था। जाहिर है कुछ साल के बाद यह अपनी स्थापना का शताब्दी वर्षगांठ मनाएगी। लेकिन उसके पहले उसका इस तरह भारत के सिकुड़ कर रह जाना भारी चिंता की बात है। किसी ने यह नहीं सोचा कि कि वामपंथी दलों की सीटें घटकर मात्र 5 रह जाएगी। जबकि सच्चाई यह भी है कि 1951-52 में हुए लोकसभा के पहले चुनाव में यह कांग्रेस के बाद दूसरी सबसे बड़ी पार्टी थी। 1952 में पहले आम चुनाव के बाद से पिछले 67 वर्षों में ट्विस्ट और टर्न के बाद, वामपंथी अनिश्चित स्थिति में हैं। सीपीआई और सीपीआई (एम) को संयुक्त रूप से राष्ट्रीय राजनीति में प्रासंगिकता हासिल करने के लिए एक नए राजनैतिक विमर्श की तलाश करनी होगी। सीपीआई के डी राजा और सीपीआई (एम) के सीताराम येचुरी को 2019 और इसके बाद के वर्षों में अशांत राजनैतिक माहौल में वामपंथी आंदोलन के नेतृत्व की जिम्मेदारी मिली हुई है।